IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मेवाड़ की मुद्रा में राजवंशीय प्रतीक और उनकी सत्ता अभिव्यक्ति

हिमांशु मीणा[1], डॉ. पंकज आमेटा[2]

[1] रिसर्च स्कॉलर, इतिहास विभाग, भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय, उदयपुर

[2] सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय, उदयपुर

सारांश

मेवाड़ की मुद्रा प्रणाली न केवल आर्थिक इतिहास का परिचायक रही है, बल्कि उसने राजवंशीय प्रतीकों के माध्यम से सत्ता की धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक अभिव्यक्ति का माध्यम भी प्रदान किया। इस अध्ययन में यह प्रतिपादित हुआ कि मेवाड़ के शासकों ने अपने सिक्कों पर सूर्य, त्रिशूल, नंदी, स्वस्तिक, तथा 'श्री' जैसे प्रतीकों का प्रयोग कर अपनी धार्मिक आस्था, राजकीय वैधता और शक्ति का प्रदर्शन किया। सिक्कों पर प्रयुक्त लिपियाँ – विशेषतः नागरी और फारसी – इस बात का संकेत देती हैं कि शासक समाज की बहुलतावादी प्रकृति को स्वीकारते हुए धार्मिक सह-अस्तित्व का संदेश देना चाहते थे। इसके अतिरिक्त, टकसाल स्थानों का चयन, जैसे चित्तौड़ और एकलिंग, धार्मिक स्थलों की महत्ता को उजागर करता है। विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि मेवाड़ की मुद्राएं तत्कालीन समाज की विचारधारा, सत्ता-व्यवस्था और सांस्कृतिक चेतना का दर्पण थीं, जो आज भी इतिहास के अध्यायों में बहुमूल्य प्रमाण के रूप में संरक्षित हैं।

मुख्य शब्द: *मेवाड़, सिक्काशास्त्र, राजवंशीय प्रतीक, सत्ता अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक प्रतीक, टकसाल.*

1. प्रस्तावना

इतिहास में सिक्के केवल आर्थिक लेन-देन के माध्यम नहीं रहे, बल्कि वे शासकीय वैधता, धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतीक भी रहे हैं। मेवाड़ की मुद्राएं इस दृष्टि से विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि उन्होंने राजवंशीय शक्ति, धार्मिक विश्वासों और स्थानीय परंपराओं को एक साथ प्रतिबिंबित किया। यह अध्ययन मेवाड़ की मुद्राओं में निहित प्रतीकों के माध्यम से सत्ता की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को समझने का प्रयास है।

मेवाड़ की ऐतिहासिक महत्ता

मेवाड़ की नींव 7वीं शताब्दी में बप्पा रावल (कालभोज) ने रखी, जिन्होंने गुहिलोत राजवंश की स्थापना की। बप्पा रावल अरब आक्रमणों को विफल करने वाले वीर राजा के रूप में प्रसिद्ध हैं। यहीं से सिसोदिया वंश का उदय हुआ, जिसमें आगे चलकर महाराणा कुम्भा, राणा सांगा और महाराणा प्रताप जैसे महान शासक हुए। 16वीं शताब्दी में राणा सांगा (1509–1528) ने मेवाड़ की सीमाएँ बढ़ाईं और कई पड़ोसी सल्तनतों को परास्त किया। इसी काल में महाराणा उदय सिंह द्वितीय ने 1559 में उदयपुर की स्थापना की, जो मेवाड़ की नई राजधानी बनी।

युद्ध एवं राजनीतिक भूमिका

मेवाड़ ने दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य के विस्तार का लंबे समय तक मुकाबला किया। राणा सांगा ने दिल्ली के लोदी वंश, मालवा और गुजरात सल्तनतों पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की। बाद में मुगल सम्राट बाबर के साथ पानीपत (1526) की लड़ाई में हार के बावजूद राणा सांगा को अपने समय का महान राजपूत शासक माना गया। बाद में अकबर की मुगल सेना ने मेवाड़ पर दबाव डाला, लेकिन महाराणा प्रताप ने उनकी अधीनता स्वीकारने से इंकार किया। 18-21 जून 1576 को हल्दीघाटी के रणक्षेत्र में मेवाड़ के महाराणा प्रताप और मुगल सम्राट अकबर की सेनाओं के बीच युद्ध हुआ, जिसमें आमेर के राजा मान सिंह प्रथम ने मुगलों का नेतृत्व किया। इस वीरता पूर्ण संग्राम में मेवाड़ी सेना ने साहस दिखाया; हालांकि परिणामस्वरूप क्षेत्रीय सीमाएं संकुचित हुईं, पर मेवाड़ की स्वतंत्रता और युद्ध कौशल की प्रतिष्ठा और प्रबल हुई।

सांस्कृतिक योगदान एवं विरासत

मेवाड़ ने कला, स्थापत्य और साहित्य में समृद्ध विरासत छोड़ी। राजपूताना में विश्व धरोहर के रूप में चिन्हित चित्तौड़गढ़ तथा कुंभलगढ़ के दुर्ग 'राजपूत वास्तुकला के गहने' माने जाते हैं। महाराणा कुम्भ ने 1448 ई. में विजय स्तंभ निर्मित किया, जो महमूद खिलजी पर विजय का स्मारक है और भगवान विष्णु को समर्पित है। विजय स्तंभ के शिल्प पर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ अंकित हैं, जो हिंदू वास्तुकला की उत्कृष्टता दर्शाती हैं। उदयपुर की झीलों से सजी नगरी और एकलिंगजी मंदिर परिसर (जिसे बप्पा रावल ने 8वीं सदी में बनवाया और राणा कुम्भ ने पुनर्निर्मित करवाया) जैसी संरचनाएँ मेवाड़ की धार्मिक दृढ़ता और स्थापत्य कौशल का प्रमाण हैं। साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में भी मेवाड़ अग्रणी रहा; १७वीं शताब्दी में सिसोदिया राजाओं द्वारा प्रायोजित मेवाड़ी चित्रकला (मिनीएचर पेंटिंग) ने मुगल प्रभावों से हटकर अद्वितीय शैली विकसित की। इस चित्रकला में पारंपरिक पात्रों और ऐतिहासिक दृश्यों को कलात्मक रूप में उकेरा गया, जो मेवाड़ की जीवंत लोककथा और वीरता का दस्तावेज़ है।

मुद्रा एवं सिक्कों में अभिव्यक्ति

मेवाड़ की ऐतिहासिक पहचान को उसकी मुद्राओं पर भी दर्शाया गया। मेवाड़ी सिक्कों पर अंकित 'श्री' शब्द पवित्रता एवं सम्मान का प्रतीक है तथा गाय, सूर्य, त्रिशूल जैसे चिन्ह सनातन संस्कृति के संकेतक हैं। सिक्कों पर एकलिंगजी मंदिर या भगवान विष्णु की आकृति चिन्हित की जाती थी, जो राज्य की धार्मिक आस्था और राजतंत्र की वैधता को प्रकट करती है। उदाहरणतः बप्पा रावल के स्वर्ण सिक्के पर एकलिंगजी की मूर्ति बनी मिली है, जिससे मेवाड़ के

राजसत्तात्मक गौरव एवं ईश्वरीय समर्थन का प्रमाण मिलता है। इस प्रकार मेवाड़ी मुद्राएँ मात्र आर्थिक लेन-देन का माध्यम नहीं रहकर शासन के प्रतिक चिन्ह बन गईं, जिनमें राज्य की शक्ति, धार्मिक दृष्टिकोण और वैधानिक अधिकार की अभिव्यक्ति निहित थी।

राजवंशीय प्रतीकों की अवधारणा

प्रतीक सामान्यतः किसी विचार, देवता या वंश का प्रतिनिधित्व करने वाला चिह्न होता है। प्राचीनकाल से राजपरिवार अपने कुल-चिह्नों (ध्वज, कोट-ऑफ-आर्म्स, मुहर आदि) द्वारा अपनी पहचान और वैधता दर्शाते आए हैं। भारत के कई राजपूत वंशों ने स्वयं को 'सूर्यवंशी' कहा और सूर्य को ही अपनी सत्ता एवं वैभव का प्रतीक माना। इसी कड़ी में मेवाड़ के सिसोदिया राजाओं ने सूर्य की पूजा की, जिससे उनकी राजनैतिक पहचान सूर्यवंशी होने से जुड़ी। उदाहरणतः 19वीं सदी के मेवाड़ के महाराणा की पदयात्रा में ले जाने वाले झंडे पर ज्वलन्त सूर्य का चित्र बना होता था, जो उनके सूर्यवंशी वंशवाद और दिव्य अधिकार का संकेत था।

प्रतीकों का राजनैतिक और धार्मिक प्रयोग

परंपरागत रूप से राजघरानों के प्रतीक राजनीतिक वैधता, शक्ति-प्रदर्शन और धार्मिक निष्ठा प्रदर्शित करते थे। सूर्य जैसे चिह्नों का उपयोग राजवंश की कुल-रक्तसीमा (सरोगसी) या दिव्य वंशवाद सिद्ध करने हेतु होता था। सूर्यप्रतीक की चमक को शक्ति और वैभव का द्योतक माना गया है। इसके अतिरिक्त हिंदू देवताओं के प्रतीक भी शक्ति और वैधता के संकेत रहे। जैसे त्रिशूल भगवान शिव का प्रमुख प्रतीक है, जो सृष्टि, संहार और पालन की त्रिराशि का प्रतिनिधित्व करता है। मेवाड़ के महाराणों का कुलदेवता शिव (एकलिंगजी) था, अतः त्रिशूल भी उनकी आध्यात्मिक पहचान में जुड़ा रहा। इसी प्रकार, नंदी (शिव का वाहन बैल) शौर्य, भक्ति और अडिग शक्ति का प्रतीक है। राजघरानों द्वारा स्वस्तिक चिह्न का प्रयोग सौभाग्य, समृद्धि एवं सूर्य की कृपा के लिए किया जाता था। इन प्रतीकों के माध्यम से राजघराना अपने आप को धर्म-रक्षा और शक्तिशाली होने का आश्वासन देता था।

मेवाड़ के प्रमुख राजवंशीय प्रतीक

मेवाड़ के रियासत में प्रयुक्त प्रमुख प्रतीकों में सूर्य, त्रिशूल, स्वस्तिक, कमल, नंदी तथा जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ शामिल हैं। सूर्य चिह्न मेवाड़ में विशेष महत्व रखता है क्योंकि सिसोदिया परिवार खुद को सूर्यवंशी मानता था। 19वीं सदी के झंडों और कोट-ऑफ-आर्म्स में सुनहरे रंग में सुवर्ण सूर्य की आकृति उकेरी जाती थी। स्वस्तिक को हिंदू धर्म में 'शुभ प्रतीक' माना जाता है; यह सकारात्मक ऊर्जा, समृद्धि और ईश्वर के आशीर्वाद का संकेत देता है। त्रिशूल, जैसा कि उल्लेख हुआ, शिव का मूल प्रतीक है और मेवाड़ के राजघराने की वीरता व धार्मिकता को दर्शाता है। नंदी (शिव का वाहन) को शक्ति, पुरुषार्थ और स्थिर भक्ति का प्रतिक माना जाता है। कमल पुष्प हिंदू- और बौद्ध मान्यताओं में पवित्रता, सौंदर्य तथा आध्यात्मिक जागरण का प्रतीक है। अंततः जैन प्रतिमाएँ जैन धर्म की अहिंसा और आत्मशुद्धि की पहचान हैं; मेवाड़ में जैन समुदाय की उपस्थिति को दर्शाने वाली जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ अथवा चिह्न भी देखने को मिलते हैं।

सामाजिक एवं धार्मिक अर्थ

इन प्रतीकों का सामाजिक-धार्मिक अर्थ भी विस्तृत है। सूर्य को दिव्यता व राजसी गौरव से जोड़ा गया है, इसलिए सूर्यवंशी वंश अपनी संप्रभुता और उत्साह को इसकी आभा से व्यक्त करता है। स्वस्तिक का अर्थ ही सुख-समृद्धि है; यह प्रतीक घर-द्वार पर शांति और मंगलकामना का संकेतिक बोध कराता है। त्रिशूल शिव के तीन प्रमुख कर्तव्यों (सृजन, स्थापना, संहार) का प्रतिनिधित्व करता है, अतः यह राजघराने को धर्मपाल एवं संसारधारी होने का परिचायक बनता है। नंदी प्रतीकात्मक रूप से धीरज और दृढ़ता का संकेत देता है, जो राजपूत पुरुषार्थ को रेखांकित करता है। कमल निर्मलता और आध्यात्मिक उन्नति का बोध कराता है। जैन प्रतिमाएँ अहिंसा और आत्मानुशासन का संदेश देती हैं, जो मेवाड़ की बहु-धार्मिक समरसता को बताती हैं। इस प्रकार, सामाजिक स्तर पर ये प्रतीक समुदाय को अपनी सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत से जोड़ने का माध्यम रहे हैं।

समयानुसार प्रतीकों का रूप-शैली परिवर्तन

कालक्रम में राजवंशीय प्रतीकों की अभिव्यक्ति में भी परिवर्तन आया। शुरुआती काल में मेवाड़ी झंडों पर सरल ज्यामितीय या देव-चित्रात्मक चिह्न होते थे, पर 19वीं सदी के अंत में अंग्रेजी शासन और औपचारिक कोट-ऑफ-आर्म्स के प्रभाव से शैली बदली। पूर्वी हिन्दू परंपरा के सूर्यमुख से युक्त शाही ढाल के स्थान पर ब्रिटिश शैली में हेलमेट और क्रेस्ट वाले कोट ऑफ आर्म्स बनाए गए। इनमें सूर्य अब ढाल से हटकर हेलमेट के ऊपर की शीर्ष मुद्रा (crest) में रखा गया। उदाहरणतः महाराणा सज्जन सिंह (1874–84) के कोट-ऑफ-आर्म्स में सुनहरा सूर्य पहले ढाल पर था, बाद में अंग्रेजी प्रभाव से इसे हीलमेट की टोपी की उपर की क्रेस्ट में स्थानांतरित कर दिया गया। इसी तरह त्रिशूल, कलश, दीप आदि पारंपरिक प्रतीकों को आधुनिक ग्राफ़िक रूप देकर नई शैली में दर्शाया गया। परिणामतः आज भी मेवाड़ के राजप्रतीक (flags, emblems) में ऐतिहासिक प्रतीक मौजूद हैं, लेकिन उनकी प्रस्तुति समय के साथ भावानुरूप विकसित हुई है।

मुद्रा का महत्व

प्राचीन काल से ही शासकों के लिए मुद्रा (सिक्का) न केवल आर्थिक विनिमय का साधन रही है, बल्कि यह सत्ता, वैधता और धार्मिक अधिकार प्रदर्शित करने का महत्वपूर्ण उपकरण भी रही है। किसी राज्य के अधिकार क्षेत्र में चलने वाले सिक्कों पर अंकित राजा का नाम, उपाधियाँ व प्रतीक उस शासक की सार्वभौमिक सत्ता और वैधता के परिचायक होते थे। उदाहरणस्वरूप, प्राचीन भारतीय सिक्कों पर अक्सर राजा की छवि या उसका संकेत चिह्न तथा अभिलेख पाए जाते हैं, जो प्रजा के बीच शासक की उपस्थिति और प्रभुत्व स्थापित करते थे। सिक्कों पर खुदी तारीख, टकसाल का नाम, घटनाओं के उल्लेख, धातु व आकार आदि भी उस दौर की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति की सटीक जानकारी देते हैं। केवल आर्थिक लेन-देन ही नहीं, मुद्रा एक प्रचार माध्यम थी जिसके द्वारा राजा अपनी शक्ति और नीतियों का संदेश प्रत्येक नागरिक तक पहुँचाता था।

मेवाड़ के सिक्कों पर धार्मिक प्रतीक और राजनाम

मेवाड़ राजवंश (सिसोदिया वंश) ने अपने सिक्कों को सत्ता-प्रदर्शन के साथ-साथ धार्मिक वैधता देने के लिए विशिष्ट तरीके से ढाला। वे स्वयं को सूर्य के वंशज (सूर्यवंशी) मानते थे, इसलिए सिक्कों पर सूर्य का प्रतीक अंकित करना राजवंश की वैधता को ईश्वरीय समर्थन देने जैसा था। एक आधुनिक अध्ययन के अनुसार मेवाड़ के सिक्कों पर प्रारंभ से ही "श्री" लिखने की परंपरा रही, जो पवित्रता एवं सम्मान का सूचक था। महाराणा अपने नाम से पहले श्री जोड़ते थे या सिक्के पर "श्री" अंकित करवाते थे, जिससे मुद्रा को धार्मिक आशीर्वाद मिला हो ऐसा आभास होता था। साथ ही सिक्कों पर अनेक हिंदू धार्मिक प्रतीक अंकित किए जाते थे, जैसे सूर्य, त्रिशूल (भगवान शिव का त्रिशूल) तथा नंदी (बैल) की आकृति। ये गाय/बैल, सूर्य और त्रिशूल सनातन धर्म के चिरकालिक प्रतीक हैं। उदाहरणस्वरूप, राणा कुंभा और राणा सांगा के कुछ तांबे के सिक्कों पर नागरी लिपि में "श्री एकलिंग..." जैसे शब्द मिलते हैं, जो मेवाड़ के आराध्य देव एकलिंगजी (शिव) की भक्ति को दर्शाते हैं। फ़ोरनम के एक विवरण के अनुसार मेवाड़ के सिक्कों की एक विशिष्ट विशेषता थी – "मैं एकलिंगजी का सेवक हूँ" का अभिलेख। इस प्रकार के लेख से शासक स्वयं को ईश्वर का आधीन सेवक दिखाकर अपनी सत्ता को धर्मसम्मत वैधता देता था। सिक्कों पर सूर्य, त्रिशूल, देवमूर्तियों की छवि अथवा 'श्री' लेख अंकित करने का स्पष्ट उद्देश्य था कि शासक की शक्ति को ईश्वरीय संरक्षण प्राप्त है। ये प्रतीक जनता में यह विश्वास जगाते थे कि राज्य की अधिष्ठान शक्तियाँ दिव्य अनुमोदन से युक्त हैं।

प्रजा के लिए निहित संदेश: शक्ति, संरक्षण और धर्मनिष्ठा

मेवाड़ के सिक्कों पर उत्कीर्ण प्रतीकों और शिलालेखों के माध्यम से शासक अपनी प्रजा को कई स्तर पर संदेश देता था। सबसे पहला संदेश शक्ति का था – मुद्रा पर राजनाम तथा राजचिह्न अंकित होने से प्रत्येक सिक्का यह ऐलान करता था कि क्षेत्र पर उसी राजा की हुकूमत है और आर्थिक लेन-देन पर उसका नियंत्रण है। दूसरा, संरक्षण का संदेश – जब प्रजा सिक्कों पर राजा से जुड़ा सूर्य या शिव का चिह्न देखती, तो उन्हें यह भरोसा मिलता कि राज्य को दिव्य शक्ति का आशीर्वाद प्राप्त है, जो शत्रुओं से रक्षा करेगा। उदाहरणतः, मेवाड़ के शासक एकलिंगजी (भगवान शिव) को अपना संरक्षक देव मानते थे और सिक्कों पर शिव के वाहन नंदी व त्रिशूल अंकित कराते थे, जिससे प्रजा में यह भाव मजबूत होता था कि राजा धर्मपालक एवं रक्षक है। तीसरा संदेश धर्मनिष्ठा का था – सिक्कों पर धार्मिक प्रतीकों एवं संस्कृत/नागरी लिपि में मंत्र या श्रद्धावचन अंकित कर शासक यह प्रदर्शित करते थे कि राज्य की नींव धर्मपरायणता पर टिकी है। "श्री" जैसे शब्द एवं देव प्रतिमाएं यह दर्शाती थीं कि शासन केवल सांसारिक शक्ति नहीं, बल्कि धार्मिक कर्तव्य का निर्वहन भी कर रहा है। इस तरह मुद्रा के जरिये जनता को आश्वस्त किया जाता था कि राजा शक्तिशाली है, धर्म के मार्ग पर है और अपने ईष्टदेव के आशीर्वाद से राज्य की रक्षा तथा पालन करेगा।

मेवाड़ के एक तांबे सिक्के पर नागरी लिपि में शिलालेख और धार्मिक प्रतीक देखे जा सकते हैं, जो शासक की धर्मनिष्ठा एवं वैधता को दर्शाते थे (१५वीं शताब्दी, राणा कुंभा काल)

इस्लामी एवं मुग़ल शासन में सिक्कों में परिवर्तन

प्रारम्भिक मध्यकाल तक भारतीय सिक्कों पर देवी-देवताओं, पशु-चिह्नों तथा नरेशों की आकृतियाँ उकेरी जाती थीं। उदाहरणस्वरूप गुप्त काल की स्वर्ण मुद्राओं पर राजा विभिन्न धार्मिक भावों में तथा पीछे देवी लक्ष्मी दर्शाई जाती थी। 12वीं सदी के बाद उत्तरी भारत में तुर्की सल्तनों के उदय के साथ इस प्रचलन में निर्णायक बदलाव आया। इस्लामी परंपरा के अनुसार सिक्कों पर जीवित प्राणियों या देवताओं की छवियाँ हटाकर उनकी जगह अरबी-फ़ारसी सुलेख को प्रमुखता दी गई। कुरान की आयतें, कलिमा (इस्लामी श्रद्धावाक्य) और शासकों के नाम व उपाधियाँ सिक्कों पर अंकित होने लगीं, जिससे सिक्के धार्मिक एवं लौकिक दोनों पहलुओं की सूचना देने लगे। सिक्के ढालने के मानक बदले और टंका नामक एक नयी मानकीकृत मुद्रा (सोने/चाँदी में) तथा छोटे मूल्य के जिटल (तांबे के सिक्के) प्रचलन में आए।

इस्लामी प्रभाव का आरंभिक चरण सामंजस्यपूर्ण भी था – कुछ मुस्लिम शासकों ने जनता का विश्वास जीतने हेतु पुराने हिंदू प्रतीकों का सीमित प्रयोग जारी रखा। उदाहरणस्वरूप, मोहम्मद बिन साम (मुहम्मद ग़ोरी) ने तराइन के युद्ध के बाद विजय-स्मारक स्वरूप पुराने राजपूती सिक्कों जैसी मुद्राएँ जारी कीं जिन पर हिंदू प्रतीक थे। उसकी एक स्वर्ण मुद्रा पर हिंदू देवी लक्ष्मी की बैठी हुई मूर्ति अंकित थी और नागरी लिपि में संस्कृत पाठ में अपना नाम "श्री महमद साम" (श्री मोहम्मद साम) खुदवाया गया। इसी प्रकार कुछ विजय के बाद ग़ोरी ने पृथ्वीराज चौहान के प्रचलित चांदी सिक्कों की नक़ल करते हुए "बुल एँव हॉर्समैन" (बैल और अश्वारोही) अंकित जिटल सिक्के ढाले, जिन पर राजपूत राजा का नाम हटाकर अरबी लिपि में "मुहम्मद बिन साम" लिख दिया गया। लेकिन ये परिवर्तन अल्पकालिक रहे। धीरे-धीरे सल्तनत काल में पूर्णत: इस्लामी सिक्का-शैली स्थापित हुई – सिक्कों के दोनों पहलुओं पर सुलेखात्मक लेखन, ज्यादातर अरबी या फ़ारसी में, और पारंपरिक हिन्दू चित्रांकनों का लोप हो गया। कुल मिलाकर, इस्लामी प्रभाव से सिक्का डिजाइन में धार्मिक प्रतीकों की जगह लिखित मजहबी अभिलेखों और शासक-उपाधियों ने ले ली, जो इस्लाम की चित्र-वर्जना का प्रतिबिंब था।

मेवाड़ राज्य द्वारा इन परिवर्तनों के साथ सामंजस्य

मुग़ल-पूर्व युग में मेवाड़ एक राजपूत बहुल हिंदू राज्य था, परंतु सिक्का प्रचलन में उसे अपने इस्लामी पड़ोसियों से तालमेल बिठाना पड़ा। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार मेवाड़ ने 15वीं सदी की शुरुआत से ही स्वयं के सिक्के ढालने शुरू कर दिए थे। प्रारम्भिक मेवाड़ी सिक्के तांबे के बने चौरस आकृति के होते थे और उन पर केवल नागरी लिपि में लेख होते थे। राणा कुम्भा (1433–1468) द्वारा जारी मुद्रा पर एक ओर संस्कृत में उनका नाम तथा विरुद (जैसे "श्री कुम्भलमेरु महाराणा श्री कुम्भकर्णस्य") खुदा रहता था और दूसरी ओर उनकी कुलदेवी/इष्टदेव का संदर्भ तथा विक्रम संवत तिथि अंकित होती थी। उदाहरणस्वरूप, राणा कुम्भा के बड़े आकार के सिक्कों के एक ओर नागरी में "श्री एकलिंग प्रसादत्" (भगवान एकलिंगजी की कृपा से) तथा संवत् (तारीख) खुदा था। यह दर्शाता है कि मेवाड़ ने इस्लामी प्रभाव के अनुरूप सिक्कों पर प्रतिमाओं के स्थान पर लिखित धार्मिक संकेत अपनाया, परंतु अपनी हिंदू आस्था को बनाए रखने के लिए देवता का नाम और संस्कृत वाक्यांश शामिल किया। छोटे मूल्य के सिक्कों पर भी केवल "श्री कुम्भलमेरु" और दूसरी तरफ "राणा कुम्भकर्ण" अथवा कहीं "कुम्भकर्ण" और दूसरी ओर "एकलिंग" जैसे सरल अंकन मिलते हैं – स्पष्ट है कि कोई चित्रांकन मौजूद नहीं था, सिर्फ़ टेक्स्ट द्वारा संदेश दिया गया।

मेवाड़ ने अपने सिक्कों की बनावट व भार भी आस-पास के इस्लामी सल्तनतों से मिलते-जुलते रखे ताकि वे व्यापक रूप से स्वीकार्य हों। राणा कुम्भा के समय से ही चौरस तांबे के फ़लूस (फ़ुलूस) मेवाड़ में चलन में आए, जो मालवा और गुजरात सल्तनतों में प्रचलित सिक्का आकार से मेल खाते थे। आगे चलकर मेवाड़ ने सिक्का लेखन में फ़ारसी-अरबी प्रभाव भी आत्मसात करना शुरू किया। राणा रायमल (रायमल्ला) के सिक्कों पर यद्यपि लिपि नागरी थी, किंतु उनकी रूपरेखा मालवा सल्तनत के सिक्कों की शैली की नकल पर आधारित थी। यह संकेत करता है कि मेवाड़ अपने हिंदू शासकीय पहचान के साथ-साथ आर्थिक व्यवहारिकता के लिए इस्लामी शिलालेख परंपरा को आंशिक तौर पर अपनाने लगा था। मेवाड़ के शासकों ने अपने नाम के साथ शाह या शाही जैसे शब्दों का प्रयोग भी आरंभ किया – जैसे संस्कृत में सिंह की जगह फ़ारसी शाह का स्वरूप "साहि/साही" प्रयोग हुआ – जो इस्लामी शीर्षकों के साथ सामंजस्य बनाने का एक प्रयास था। कुल मिलाकर, मेवाड़ ने सिक्का शास्त्र में इस्लामी परिवर्तनों के साथ सामंजस्य यह रखकर बनाया कि सिक्कों की भाषा-द्विभाषिता और डिजाइन तो परिवर्तित माहौल के अनुरूप हो, लेकिन उन पर अपनी परंपरा के प्रतीक (देवता का नाम, संस्कृत शब्द) भी स्थान पाएँ। इस नीति के फलस्वरूप मेवाड़ की मुद्रा घरेलू प्रजा और पड़ोसी मुस्लिम राज्यों – दोनों के बीच स्वीकार्य व प्रचलित रही।

राणा सांगा के सिक्कों में फारसी व नागरी लिपि का प्रयोग: सत्ता प्रदर्शन और व्यवहारिकता

राणा सांगा (संग्राम सिंह, शासनकाल 1509–1527) के युग में मेवाड़ के सिक्का-विन्यास ने हिंदू और इस्लामी दोनों परंपराओं का अनूठा समावेश दिखाया। राणा सांगा ने मालवा के मुस्लिम शासक को पराजित कर चित्तौड़ एवं चंदेरी पर अधिकार किया, जिसके बाद उन्होंने विजित प्रदेश में प्रचलित सिक्कों की तर्ज पर अपनी नई मुद्रा जारी की। राणा सांगा के तांबे के फ़लूस सिक्कों के एक पहलू पर नागरी लिपि में "श्री राणा सांगराम साहि" खुदा हुआ मिलता है, वहीं दूसरे पहलू पर फ़ारसी लिपि में सल्तनत शैली की उपाधि "अल-सुल्तान बिन अल-सुल्तान" अंकित है। कई सिक्कों पर चंदेरी टकसाल से जुड़ा हृदय-आकार का निशान भी खुदा है, जो उस समय की टकसाली पहचान को दर्शाता है। नागरी लेख वाली तरफ़ राणा सांगा का नाम और विक्रम संवत में तिथि अंकित होने से यह सुनिश्चित हुआ कि हिंदू प्रजा और दरबार में सिक्के की वैधता व पहचान बनी रहे। दूसरी ओर फ़ारसी/अरबी लिपि में "सुल्तान पुत्र सुल्तान" लिखकर सांगा ने मुस्लिम प्रजा एवं शत्रुपक्ष को संकेत दिया कि मालवा क्षेत्र पर अब उनका उसी प्रकार आधिपत्य है जैसा पूर्व सुल्तानों का था। इस प्रकार द्विभाषी सिक्कों ने राणा सांगा की सत्ता के दो पहलू उजागर किए – सत्ता का प्रदर्शन और व्यवहारिकता।

सत्ता प्रदर्शन की दृष्टि से, फ़ारसी लिपि में सल्तनती उपाधि प्रयोग करना राणा सांगा की राजसी महत्त्वाकांक्षा को दिखाता है। "अल-सुल्तान बिन अल-सुल्तान" जैसे शब्दावली अपनाकर उन्होंने खुद को विजित मुस्लिम प्रांत का वैध शासक प्रदर्शित किया और इस्लामी दुनिया की नज़र में एक सुल्तान के समकक्ष खड़ा किया। यह उनकी राजनीतिक सूझबूझ थी कि शत्रु के सिक्का मॉडल को अपना कर, जनता में संदेश जाए कि शासन परिवर्तन के बावजूद सिक्के और अर्थव्यवस्था स्थिर रहेंगे। व्यवहारिकता की दृष्टि से, द्विभाषी सिक्कों ने अलग-अलग भाषिक व धार्मिक समूहों के बीच स्वीकृति पाना आसान बनाया। फ़ारसी लिपि/भाषा उस समय उत्तर भारत की प्रशासनिक और व्यापार की सार्वजनिक संपर्क भाषा थी, अतः सिक्के पर फ़ारसी होने से मुस्लिम व्यापारियों, सिपहसालारों व आम जनता ने उसे सहजता से स्वीकार किया। समानांतर रूप से नागरी लिपि ने हिंदू प्रजा, राजपूत सरदारों एवं पारंपरिक समाज को

आश्वस्त किया कि यह उनकी अपनी सत्ता की मुद्रा है। इस प्रकार राणा सांगा के सिक्कों का द्विभाषी स्वरूप एक रणनीतिक समझौता था – जिससे राजनैतिक वैधता भी स्थापित हुई और व्यापारिक व्यवहार्यता भी सुनिश्चित हुई।

सिक्कों पर सल्तनत-शैली की उपाधियाँ: ऐतिहासिक उदाहरण एवं राजनीतिक निहितार्थ

दिल्ली सल्तनत और अन्य इस्लामी राजवंशों ने सिक्कों पर विलक्षण उपाधियों का प्रयोग कर सत्ता का संदेश प्रसारित किया। ऐसे सल्तनत-शैली की उपाधियों के कुछ प्रमुख उदाहरण और उनके निहितार्थ इस प्रकार हैं:

अलाउद्दीन खिलजी (1296–1316) – उसने अपने सिक्कों पर स्वयं को "सिकंदर-सानी" (या सिकंदर-ए-सानी, अर्थ: द्वितीय सिकंदर) घोषित किया। यह उपाधि सिक्कों पर प्रदर्शित करने का निहितार्थ था कि अलाउद्दीन खुद को दुनिया के महान विजेता सिकंदर महान (अलेक्ज़ेंडर) के समकक्ष मानता है। एक स्रोत के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी सिकंदर की विरासत से भलीभांति परिचित था और अपने आपको महानता में उसका उत्तराधिकारी दर्शाना चाहता था। "सिकंदर सानी" की उपाधि सिक्कों पर अंकित कर उसने प्रजा व शत्रुओं को राजनीतिक संदेश दिया कि वह अद्वितीय विजेता है और पूरा हिंदुस्तान उसके अधीन आना तय है। इससे उसके शासन के वैभव और शक्ति का प्रचार हुआ।

कुतुबुद्दीन मुबारक ख़िलजी (1316–1320) – अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी ने एक कदम आगे बढ़कर ख़लीफ़ा का नाम सिक्कों से हटा दिया और खुद को "खलीफ़तुल्लाह" (अर्थात अल्लाह का ख़लीफ़ा, ईश्वर का प्रतिनिधि) घोषित किया। सल्तनत के पूर्व शासक प्रतीक रूप में बगदाद के अब्बासी ख़लीफ़ा का नाम सिक्कों पर देते थे, पर मुबारक ख़िलजी ने सिक्कों पर सीधे खुद को ही ख़लीफ़ा घोषित कर राजनीतिक स्वतंत्रता दिखाई। उसने अपनी महत्त्वाकांक्षा को दर्शाते हुए "सिकंदर-उज़-ज़माना" (युग का सिकंदर) जैसी उपाधि भी अपनाई। इन उपाधियों का राजनीतिक आशय साफ था – मुबारक ख़िलजी अपने को किसी ख़लीफ़ा के अधीन नहीं बल्कि खुद सम्प्रभु शासक बता रहा था, और अपनी शक्ति को इतिहास के महान विजेताओं के बराबर रख रहा था।

रुक्न-अल-दीन कैकाउस (बंगाल का सुल्तान, 1291–1301) – इस बंगाल सुल्तान ने अपने सिक्कों और अभिलेखों में अभिमानपूर्वक खुद को "सुल्तान बिन सुल्तान" (सुल्तान का पुत्र सुल्तान) कहा है। साथ ही उसने "सुल्तान उस-सलातीन" (सुल्तानों का सुल्तान, अर्थात महानतम सुल्तान) की उपाधि भी धारण की। इन पदवियों द्वारा कैकाउस अपनी वंशानुगत वैधता और अन्य समकालीन शासकों पर सर्वोच्चता जतलाना चाहता था। एक जारी सिक्के के लेख से यह पुष्टि होती है, जहाँ अरबी में पूरा ख़िताब इस प्रकार खुदा था: "अल-सुल्तान अल-आज़म रुक्न अल-दुनिया वद्दीन अबुल मुज़फ़्फर कैकाउस अल-सुल्तान बिन अल-सुल्तान बिन सुल्तान"। यानी वह खुद को तीन पीढ़ियों से सुल्तानों का वंशज और महान सुल्तान घोषित कर रहा था। इस तरह की उपाधियाँ दर्शाती हैं कि क्षेत्रीय सुल्तान अपनी स्वायत्त सत्ता को दर्शाने और जनता में राजवंश की प्रतिष्ठा बढ़ाने हेतु सिक्कों का प्रयोग प्रचार माध्यम के रूप में करते थे। बंगाल की सीमा पर दिल्ली सल्तनत का दबाव होते हुए भी कैकाउस ने "सुल्तानों का सुल्तान" कहलाकर राजनीतिक साहस व स्वतंत्र हैसियत दिखाई, जिसे उसके सिक्के प्रसारित करते थे।

मेवाड़ के राणा सांगा (1509–1527) – यद्यपि हिंदू शासक थे, फिर भी उन्होंने सल्तनत-शैली की उपाधि को अपने सिक्के पर प्रयोग किया। जैसा पूर्व वर्णित, सांगा के चंदेरी टकसाल से निर्गत सिक्के पर फ़ारसी में "अल सुल्तान बिन अल सुल्तान" अंकित था। एक हिंदू राजा द्वारा सुल्तान की उपाधि धारण करना असामान्य था और इसका राजनीतिक

अभिप्राय था – सांगा मालवा के विजेता एवं नये शासक के रूप में खुद को वहां के मुस्लिम सुल्तानों की बराबरी पर ला रहे थे। यह कदम हिंदू तथा मुस्लिम प्रजा दोनों को यह संकेत देने के लिए था कि मेवाड़ नरेश की सत्ता किसी इस्लामी बादशाह से कम नहीं है। अपनी सिक्का लेखनी में इस तरह की उपाधि सम्मिलित कर सांगा ने उस दौर की राजनयिक भाषा अपनाई, जिससे उनकी हुकूमत को विस्तृत स्वीकृति और सम्मान मिल सके।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि सिक्कों पर प्रयुक्त ये सल्तनती उपाधियाँ केवल अलंकरण नहीं थीं, बल्कि सोची-समझी राजनीतिक रणनीति का हिस्सा थीं। सिक्कों पर दर्ज खिताब जनता तक शासक का संदेश पहुंचाते थे – चाहे वह स्वयं को ख़ुदमुख़्तार सम्राट दिखाना हो, अपने वंश को वैध ठहराना हो, या अपनी विजय और शक्ति को ईश्वरीय मंजूरी प्रदान करना हो। सिक्के हर वर्ग के हाथ में आते थे, इसलिए उन पर लिखी ये उपाधियाँ उस युग के "प्रचार माध्यम" की तरह कार्य करती थीं। उदाहरणस्वरूप, अलाउद्दीन द्वारा सिकंदर-सानी की पदवी ग्रहण करना उसके विश्वविजयी दृष्टिकोण का ऐलान था, जबकि अब्बासी ख़लीफ़ा का नाम हटाकर खुद को ख़लीफ़ातुल्लाह घोषित करना सल्तनत के धार्मिक-राजनीतिक स्वायत्तता का दावा था। इसी तरह सुल्तान बिन सुल्तान या सुल्तान-उस-सलातीन जैसी उपाधियाँ सिक्कों पर अंकित कर क्षेत्रीय सुल्तान अपने को ख़ून और ताक़त दोनों में बेजोड़ दर्शाते थे। कुल मिलाकर, मध्यकालीन भारतीय सिक्कों पर सल्तनत-शैली की उपाधियों का प्रयोग शासकों के सत्ता प्रदर्शन, वैधता स्थापना एवं कूटनीतिक संदेश का प्रभावी उपकरण था, जिसने उस दौर की सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संप्रेषण में अहम भूमिका निभाई।

2. उद्देश्य:

I. मेवाड़ के सिक्कों में प्रयुक्त राजवंशीय प्रतीकों (जैसे: एकलिंग, सूर्य, त्रिशूल, राजसी उपाधियाँ) की पहचान और व्याख्या करना।
II. सिक्कों पर प्रयुक्त लिपियों (नागरी, फ़ारसी) और भाषा के माध्यम से सत्ता के सांस्कृतिक संदेश को समझना।
III. सिक्कों के माध्यम से मेवाड़ शासकों द्वारा सत्ता वैधता, सांस्कृतिक अस्मिता और राजनीतिक रणनीति का मूल्यांकन करना।

3. अध्ययन ढाँचा व पद्धति:

अध्ययन का स्वरूप:

यह अध्ययन एक ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक शोध है, जिसमें मेवाड़ राज्य की प्राचीन तथा मध्यकालीन मुद्राओं का विश्लेषण कर यह समझने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार इन सिक्कों के माध्यम से सत्ता, धर्म और सांस्कृतिक पहचान की अभिव्यक्ति की गई।

स्रोत सामग्री :

प्राथमिक स्रोत :

- मेवाड़, मालवा, मुग़ल व दिल्ली सल्तनत की प्राचीन मुद्राएँ (संग्रहालयों व डिजिटल सिक्का संग्रहों जैसे MintageWorld, CoinIndia आदि से)।
- सिक्कों पर अंकित लेख, टकसाल चिह्न, लिपियाँ एवं प्रतीक।

द्वितीयक स्रोत :

- सिक्काशास्त्र पर आधारित शोध ग्रंथ, निबंध, ऐतिहासिक रिपोर्टें (जैसे: भारतीय रिज़र्व बैंक का मुद्रा संग्रह, ASI रिपोर्टें)।
- इतिहासकारों एवं संग्रहकर्ताओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाएं, वेबसाइट सामग्री एवं संग्रहालय अभिलेख।

शोध पद्धति :

- **वर्णनात्मक विश्लेषण :** मुद्राओं के दृश्य-विश्लेषण द्वारा उनके प्रतीकों, आकार, धातु, लिपि, और राजसी अभिलेखों का विवरण किया गया।
- **सांस्कृतिक व्याख्या :** सिक्कों के प्रतीकों को धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संदर्भ में विश्लेषित कर उनकी अभिव्यक्ति का अर्थ निकाला गया।
- **तुलनात्मक दृष्टिकोण :** मेवाड़ की मुद्राओं की तुलना समकालीन मुस्लिम सल्तनतों, मुग़लों, और अन्य राजपूत राज्यों की मुद्राओं से की गई।
- **सिंथेसिस :** विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं को समेकित कर निष्कर्ष निकाला गया कि सिक्के न केवल आर्थिक साधन थे, बल्कि सांस्कृतिक-सत्ता के प्रतीक भी थे।

सीमा एवं संभावनाएँ :

- अध्ययन मुख्यतः सिक्का प्रतीकों एवं लेखन पर केंद्रित है, अतः आर्थिक पहलुओं (जैसे: मुद्रा प्रसार, क्रय शक्ति) को सीमित रूप से छुआ गया है।
- संग्रहालयों की सीमित पहुँच के कारण कुछ दुर्लभ सिक्कों का प्रत्यक्ष अध्ययन संभव नहीं हो सका।
- भविष्य में यह अध्ययन मेवाड़ के बाहर अन्य राजपूत राज्यों की मुद्राओं पर भी विस्तृत किया जा सकता है।

यह अध्ययन पद्धति मेवाड़ की मुद्रा पर गहन सांस्कृतिक-राजनीतिक विश्लेषण प्रस्तुत करती है, जिससे यह समझने में सहायता मिलती है कि सिक्के उस समय केवल लेन-देन के साधन नहीं थे, बल्कि सत्ता और पहचान की सशक्त भाषा थे।

4. परिणाम :

मेवाड़ की मुद्राओं पर किए गए इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि इन सिक्कों ने न केवल आर्थिक विनिमय का माध्यम बनकर कार्य किया, बल्कि वे तत्कालीन राजसत्ता, धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रभावशाली प्रतीक भी थे। शासकों ने सूर्य, त्रिशूल, नंदी और 'श्री' जैसे प्रतीकों के माध्यम से न केवल अपनी धार्मिक आस्थाओं को दर्शाया, बल्कि राज्य की शक्ति और वैधता को भी स्थापित किया। प्रारंभ में जहाँ नागरी लिपि का प्रयोग आमजन से निकटता बनाए रखने का संकेत देता है, वहीं मुग़ल प्रभाव के समय फारसी लिपि और इस्लामी उपाधियों का समावेश सत्ता की व्यवहारिक रणनीति का परिचायक रहा। राणा सांगा जैसे शासकों द्वारा एक ही सिक्के पर नागरी और फारसी दोनों लिपियों का उपयोग करना, धार्मिक सहिष्णुता और समावेशिता की ऐतिहासिक दृष्टि को रेखांकित करता है। चित्तौड़ और एकलिंग जैसे पवित्र स्थलों का टकसाल नाम के रूप में अंकन, उन स्थलों को धार्मिक और राजनीतिक रूप से मान्यता देने का माध्यम बना। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि मेवाड़ की मुद्राएं केवल आर्थिक साधन नहीं, बल्कि सत्ता, संस्कृति और धार्मिक चेतना के समन्वित प्रतीक थीं, जिन्होंने तत्कालीन समाज की मानसिकता और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को स्पष्ट दिशा दी।

संदर्भ सूची :

1. कुमार, अमितेश. मेवाड़ राज्य में प्रचलित सिक्के. इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र (IGNCA), 2003. https://ignca.gov.in/coilnet/rj065.html

2. सोमाणी, राम वल्लभ. History of Mewar: From Earliest Times to 1751 A.D. जयपुर: रांका एंड कंपनी, 1975.

3. मेहता, सुमित. "मेवाड़ की रावल शाखा के सिक्के (1303 ई. तक)." Inspira – Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME), खंड 10, अंक 1, जनवरी 2020, पृष्ठ 113–115. https://inspirajournals.com

4. सिंह, विनीता. "पद्मावती के जौहर के बाद मेवाड़ में बढ़ने लगा था जैन धर्म का प्रभाव, शाही सिक्कों से हुआ खुलासा." राजस्थान पत्रिका (कोटा), 18 नवम्बर 2017. https://www.patrika.com

5. भारतकोश – ज्ञान का हिन्दी महासागर. "मेवाड़ राज्य में प्रचलित सिक्के." 2021. https://www.bharatdiscovery.org

6. CoinIndia. "The Coin Galleries: Mewar." CoinIndia.com, 2019. https://www.coinindia.com

7. Mintage World. "2 Pies Coin with Trishul." MintageWorld, 19 अक्टूबर 2021. https://www.mintageworld.com/media/detail/14764

8. Foronum. "Mewar Coin Catalog." https://www.foronum.com/coins-catalog/india-princely-states/categoria-182-mewar

9. जोएल एंडरसन. "Coins of India – Mughal and Princely States." JoelsCoins वेबसाइट, 2021. https://www.joelscoins.com

10. Oriental Numismatic Society (ONS), लंदन. Journal of the ONS, अंक 231, शीतकालीन 2017. (शैलेष जैन द्वारा मेवाड़ के जैन प्रभाव वाले सिक्कों पर विशेष लेख)

11. उपिंदर सिंह. A History of Ancient and Early Medieval India: From the Stone Age to the 12th Century. Pearson Education India, 2008.

12. ए. एस. अल्तेकर. Coinage of Ancient India. वाराणसी: बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, 1957.

13. जॉन डेल. Living Without Silver: The Monetary History of Early Medieval North India. Oxford University Press, 1990.

14. गुप्त, पी. एल. भारतीय सिक्कों का इतिहास (History of Indian Coins). वाराणसी: भारती भवन, 1972.

15. बैनर्जी, पी.सी. The Coins of the Hindu States of Rajasthan. कोलकाता: ASI Publication, 1955.

16. अग्रवाल, विमलचंद्र. राजस्थान की मुद्रा और टकसालें. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1998.

17. चंद्र, सत्यनारायण. मेवाड़ के सिक्कों में जैन प्रभाव. भारतीय इतिहास शोध पत्रिका, खंड 28, अंक 2, 2018.

18. सक्सेना, रामेश्वरलाल. राजस्थानी राजवंशों के प्रतीक चिन्ह. जयपुर: संस्कृत अकादमी, 1992.

19. कोठारी, लोकेश. Indian Numismatics: A Historical and Cultural Study. दिल्ली: Aryan Books International, 2006.

20. Sharma, R.C. Cultural Heritage of Rajasthan: Coins and Inscriptions. दिल्ली: National Museum Publication, 1994.

21. सरन, एस.एस. Coins as Source of Indian History. दिल्ली: Publications Division, 1980.

22. Das, S.K. Iconography of Indian Coins: A Visual Survey. कोलकाता: Numismatic Society of India, 2010.

23. मौर्य, एस.के. भारतीय सिक्कों की कला. बनारस: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2005.